कदली के फूल

ऋता शुक्ल

कदली के फूल

आज जो मुझसे बहुत दूर चली गई हैं - उनकी कहानी लिखने बैठी हूँ मैं। वही शीतलपाटी कमरे के कोने में आले पर रखी वही मूर्तियाँ, रात को दीया-बाती कर लेने के बाद उसके सफेद आँचल का छोर पकड़कर मेरा छोटा भई मचल पड़ता था-बुआ, अब कहानी सुनाओ न! - और बुआ अपनी स्मृति के खजाने से अनमोल मोती ढूँढ़ लातीं - सोनकेसिया की कहानी, सात भाई चंपा की कहानी, राक्षस और फूलोंवाली राजकुमारी की कहानी, दीपू मचलकर कहता - नहीं बुआ, यह सब नहीं, तुम

https://www.hindiadda.com/kadali-ke-phool/

अमोलवा वाली कहानी सुनाओ न! बुआ फीकी हँसी हँसती हुई शीतलपाटी पर करवट बदलकर उसे और पास खींच लेती थीं - तू रोज-रोज अमोलवा की कहानी क्यों सुनता है रे?

तुम इतना बढ़िया गाती जो हो। और बुआ गाने लगतीं - अमोलवा और कदली अपनी माँ के इंतजार में बिरवा बने खामोश हैं। राजा आता है, कोतवाल आता है - मंत्री और दूसरी रानियाँ आती हैं। कदली के फूलों को देख सब मुग्ध हैं। सबके हाथ फूल तोड़ने के लिए मचल रहे हैं। कदली अपने भाई से पूछती है - सुनु मोरे भइया अमोलवा हो ना, भइया राजा पापी आए फुलवा लोढ़न हो ना... भाई आदेश देता है - सुनु मोरी बहिनी कदलिया रे ना, बहिनी डाले-पाते उठहुँ अकसवा हो ना।

और कदली अपनी डालों-पातियों को सँभालती हुई आकाश में खिल जाती है। सब चकित हैं - यह चमत्कार कैसे हुआ? अंत में रनिवास की सबसे उपेक्षिता रानी आती है - कौआहँकनी रानी, तुम फूल तोड़ो तो जानें। अमोलवा के नए पत्ते जमीन तक लहरा जाते हैं। उसका हुलास देखने योग्य है - सुनु मोरी बहिना कदलिया रे ना, बहिनी डाले-पाते लोटहुँ भूइयाँ हो ना।

कौआहँकनी रानी का आँचल फूलों से भर गया। राजा दंग रह गए। यह क्या? पुरोहित के इशारे पर रानी ने आगे बढ़कर दोनों बिरतों को छू दिया और बिरवे सुंदर बालक-बालिका बनकर अपनी माँ के गले लग गए।

अमोलवा और कदली की कहानी पूरी करने के बाद लंबी साँस खींचती बुआ से लिपटता हुआ दीपू कहता था - तुमने आखिरी बात तो कही नहीं बुआ, हमें हरदम याद दिलाना पड़ता है।

जैसे कौआहँकनी के दिन फिरे, वैसे सबके पलट आएँ है भगवान! बुआ ताख पर रखी मूर्तियों की ओर हाथ जोड़ देती थीं।

जब से मैंने होश सँभाला था, बुआ का एक ही रूप मेरी आँखों में स्थिर हो गया था... भूरी या काली किनारीवाली सफेद साड़ी, गले में काले मोतियों के बारीक दानों की माला... दोनों कलाइयों में पँच धातु के दो पतले कड़े।

पाँच भाइयों के बीच इकलौती बहन कालिंदी बुआ, अम्मा की लाड़ली, बाबा की आँख की पुतली-सी... भाइयों को ताकीद थी, कोई कानी अँगुरी से भी न छूने पाए।

बुआ के जमाने में हमारे गाँव में लड़कियों की पढ़ाई का प्रचलन भी कहाँ था! दस-ग्यारह बरस की होते ही लड़कियों की कमर में छह हाथ की छोटी साड़ी बाँध दी जाती और उन्हें सिखाया जाता.... घर के अंदर रहा करो, रसोई-पानी में अम्मा और भौजी की मदद करो। मेरे बाबा शिवमंगल तिवारी ने गाँव की पाठशाला के पंडितजी को चेतावनी दी थी-बेटों की पीठ पर चाहे बेंत की छड़ी ही क्यों न टूटे, बिटिया को जरा-सी खरोंच भी न लगने पाए।

पंडितजी की तनी हुई मूँछों के नीचे एक मुलायम मुसकान उभर आती-बेटी जात, कब तक साथ रहेगी? जो यह लड़का होकर पैदा हुई होती तो शिवमंगल तिवारी का कुल-खानदान तर जाता। इसकी जीभ पर सरस्वती का वास है।

सातवीं कक्षा में थी, जब बुआ का ब्याह हुआ था। विदाई के समय उन्हें गले से लगाकर बाबा फूट-फूटकर रोए थे - इसी बिछोहवाले दिन के लिए तुझे हमने पढ़ाया-लिखाया! बिटिया वहाँ से अपना कुशल-मंगल तो लिख सकेगी न !

फूफाजी के सजीले रूप पर सब मुग्ध थे - बनारस विश्वविद्यालय का सबसे तेज छात्र रह चुका है मेरा दामाद। मेरी बिटिया के रूप-गुण के अनुरूप ही जोड़ी मिली है। अब बिटिया का घर बस जाये, उसका मन अपनी ससुराल में रम जाए तो मुझे शांति मिले।

बाबा ने जी खोलकर दान-दहेज दिया था। चौदह वर्षीया कालिंदी बुआ के सुंदर चेहरे पर टोले भर की औरतें लुभा गई थीं - ओझाइन के अँगना में सिया सुंदरी उतर आई है।

आहा, बड़ी सुलच्छनी बहू है बहिनी, सोने जैसा दमकता रंग, ओझाइन ने तो सचमुच ही जग जीत लिया।

ननदों के इशारे पर उठती-बैठती घूँघट गिराती वे थक चुकी थीं। गाँव की भावजों ने कैसी-कैसी चुहलें की थीं - कुँअर-कन्हैया सामने आएँगे, तब होगा बबुनी?

उन्होंने खीजकर बड़ी भावज के मुँह पर हाथ रख दिया था। मझली भौजी उन्हें गुदगुदाने लगी थीं, और वे उनकी अँकवार में बँधी बेतहाशा रो पड़ी थीं - भौजी, हमें बड़ा डर लगता है। अम्मा से कहो न, हमें वहाँ न भेजें।

ससुराल में वह उनका तीसरा दिन था। पूजा की रस्म निबटाती सास को ननदों से खुसुर-फुसुर बतियाते देखकर उनके कान खड़े हो गए थे - दालान की बगलवाली कोठरी ठीक रहेगी। चंदर के लिए भी सुविधा होगी। उस रात ननदों का रतजगा था। नींद से निढाल होती वे बड़ी ननद की अँकवार में बँधी ससुराल की लंबी-चौड़ी अँगनाई पार करती दालान से सटी छोटी कोठरी में पहुँचा दी गई थीं। कैसे-कैसे फूहड़ मजाक किए थे उन लोगों ने। उनके कान जलने लगे थे। भीतर से रह-रहकर रूलाई फूट रही थी। अम्मा-अम्मा... उनका अचेतन सब कुछ छोड़कर मुक्त भाव से माँ की गोद में सिमट जाने के लिए बगावत कर रहा था।

रात के अँधेरे में दो बलिष्ठ भुजाओं के कठोर बंधन में वे बेरहमी से जकड़ गई थीं। नहीं-नहीं-उनकी तेज चीख बाहर फूट पड़ती, इसके पहले चौड़ी हथेलियों का मजबूत दबाव उनके होठों पर पड़ा था और उनकी कराहने की शक्ति भी विलुप्त हो गई थी।

सात दिनों तक अँधेरी कोठरी की उस जहालत को भुगतने के बाद जब वे मायके लौटी थीं, तब अम्मा ने पूछा था-कैसी है ससुराल, कैसे हैं सास-ससुर? बड़ी भावजों ने कुरेदा था-ननदोई कैसे लगे बबुनी, कोई गुल खिला या कोरी ही लौट आई?

मझली भौजी ने अकेले में उनका मन टटोला था-सच-सच बताना बबुनी, ननदोईजी से भेंट हुई या नहीं? तुम्हारे मन में कोई उछाह नहीं देख रहे हैं, बात क्या हैं? वे एक भी शब्द कहे बगैर खामोशी से वापस लौट गई थीं।

कोई साल-भर बाद, चंदर फूफा को जमशेदपुर में किसी कम्पनी में एक बड़े पदाधिकारी का ओहदा मिल गया था। उस रात पहली बार बुआ ने फूफा की आवाज सुनी थी-मेरे जाने के बाद तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। वैसे मैं बीच-बीच में आता ही रहूँगा। क्यों ठीक है न?

बुआ के मुँह से बेतहाशा जवाब फूट पड़ा था - बिलकुल ठीक, हम भी निश्चिंत सो सकेंगे।

उस दिन वे यह भी नहीं समझ पाई थीं कि फूफा नाराज होकर उनकी कोठरी से निकले थे। एक महीने बाद बुआ की ननद ने उनकी कोठरी में आकर उन्हें उपदेश दिया था - तुमने तिरिया जनम का मोल नहीं समझा बहू, मर्द की इच्छा का मान जो औरत नहीं रखती, उसका भी कोई जीवन है भला? चंदर तुमसे रूठकर गया है। वह अपने बहनोई को बता रहा था-उससे बोलती नहीं, उसकी सेवा नहीं करती... एक बात जान लो बहू, मर्द-मानुस की इच्छा का तिरस्कार करके किसी तिरिया का वास नहीं

हुआ है। चंदर के सुभाव से तुम परिचित नहीं हो। एक बार उखड़ गया तो जल्दी पिघलनेवाला नहीं है।

बुआ ने बड़े शांत भाव से उत्तर दिया था - हमने अपने जानते कभी कोई बेअदबी नहीं की दीदीजी, उन्होंने मेरे साथ जोर-जबरदस्ती की, तब भी...

बुआ की सास की आँखें कपाल पर चढ़ गई थीं-कैसे कुबोल कढ़ा रही है तिवारी की बेटी, मेरे बेटे ने कौन-सी जोर-जबरदस्ती की तेरे साथ? ऐसी ही सती-सावित्री बनने की साधी थी तो कंठी-माला लेकर बाप की ठाकुरबारी अगोरती, चंदर की जिंदगी खराब करने की क्या जरूरत थी भला?

उस दिन के बाद बाबा कितनी ही बार बुआ को लिवाने गए-चल बिटिया, अपने गाँव चल। मैं समझूँगा, मेरे चार नहीं, पाँच बेटे हैं। मेरी खेती और गाँव के मकान का एक हिस्सा तेरे नाम भी होगा। उन्होंने बाबा के पैर छू लिए थे - असीस दो बाबूजी कि सब कुछ सह सकूँ।

और कालिंदी बुआ को सारी उमंगें ससुराल की उस तंग कोठरी में दफन होकर रह गई थीं। चंदर फूफा ने कभी उन्हें अपने साथ जमशेदपुर ले जाने का आग्रह नहीं किया था। वे साल-छह महीने पर घर आते भी तो बाहर की दालान भर से ही नाता रखते थे। कालिंदी बुआ की बड़ी ननद ने समझौते का सूत्र बनना चाहा था - बहुरिया अकेली है, तू भीतर क्यों नहीं सो जाता चंदर, उसकी तबीयत ठीक नहीं है। जा, देख तो ले कम-से-कम।

फूफा ने जोर से सुनाकर बड़ा ही चुटीला जवाब दिया था - तुम्हारी बहुरिया काठ-पत्थर की है दिदिया, उसे कोई बीमारी लग ही नहीं सकती। वह तो एक जिंदा लाश है। मैं उसे जिंदगी-भर ढोने की जहालत नहीं पाल सकता। बाबूजी ने यह संबंध करने से पहले मुझसे पूछा भी था? अब वे और अम्मा भुगतें।

कालिंदी बुआ की सूखी हुई आँखें आँवे की तरह धधक उठी थी - मैं काठ-पत्थर की नहीं, जिंदा लाश भी नहीं, लेकिन तुम एक बलात्कारी जरूर हो। अँधेरे कमरे में बाज की तरह झपटने से पहले तुमने मुझसे कुछ तो पूछा होता, क्या मेरी इच्छा-अनिच्छा कुछ भी नहीं थी? तुमने मुझे सही-सही जानने की कोशिश ही कब की? तुम्हारे लिए मैं एक शरीर-मात्र थी। मेरी आत्मा की एक भी पुकार सुनी तुमने? कभी तुमने पीछे मुड़कर देखा, मुझ पर क्या बीती? मेरी आत्मा की रिक्तता का कोई अनुभव तुम्हें हुआ?

फूफा उस दिन के बाद गाँव नहीं लौटे थे। उनके छोटे भाई का ब्याह तय हुआ था। उन्होंने साफ कहलवा दिया था - एक ही शर्त पर गाँव लौटूँगा - उस कुलटा की परछाईं भी मेरे सामने न पड़े... अपनी ससुराल में बुआ की स्थिति सचमुच ही लोककथा की उस कौआहँकनी-सी हो गई थी जिसे घर की दासियाँ भी हेय नजर से देखती थीं। नयी दुलहिन को कोहबर घर की ओर ले जाती हुई सास ने कालिंदी बुआ के पास खबर भिजवाई थी-बड़की से कहो, अपनी चीज-बसत और पेटी गोहाल की बगलवाली कोठरी में ले जाए। नयी बहुरिया उसी कोठरी में रहेगी। बुआ ने अपना कमरा छोड़ने से इनकार कर दिया-अम्माजी से कह दो, मैं इस घर से नहीं जाऊँगी। रिश्ते की सभी औरतों का मजमा आँगन में जुटा था-उस भीड़ के बीच से उठकर उसकी सास गालियाँ बकती हुई कोठरी में घुस गई थी-तूने हमें उलटा जवाब दिया बड़की, तेरी यह मजाल! किस बात का घमंड है तुझे? मोरी के कीड़े की जगह मोरी के पास ही होती है, समझी। इस घर में रहना है, तो हमारा हुकुम मानकर ही चलना होगा।

बड़ी बुआ की गोपनीय वेदना उनकी आँखों से झर-झर बह निकली थी - मुझे नाली का कीड़ा तो आप लोगों ने बना दिया अम्माजी, क्या कमी थी मुझमें? अब कम-से-कम इस कोठरी का आसरा तो मुझसे मत छीनिए। मैं भी तो आपकी बहू हूँ।

बुआ की सास ने गरजते हुए अपनी बेटी को ललकारा था-देखती क्या है सुमिरी, इसका सारा सामान गोहाल में डाल दे, फिर यह अपने-आप चली जाएगी। हमने एक बार कह दिया, इस बाँझिन का मुँह नयी बहुरिया हर्गिज न देखने पाए।

आँगन में इकट्ठी सभी औरतें इस दृश्य का आनन्द लेने के लिए बुआ के इर्द-गिर्द जुट आई थीं। एक-दूसरे के कानों में फुसफुसाकर वे बड़ी बुआ के विषय में बहुत-सी कही-अनकही बातें दोहराती जा रही थीं। उनकी फुसफुसाहट इतनी तेज थी कि बुआ के कान जलने लगे थे-पहली ही रात इसने अपने मर्द को कोठरी के बाहर निकाल दिया।

- अब तो चंदर इसका मुँह भी नहीं देखता।

- अरे, उसने तो गाँव आना ही छोड़ दिया है।

- सुना है, शहर में ही किसी क्रिस्तान औरत के साथ रहने लगा है।

- बेचारा लड़का, उसका क्या दोष है भाई। जरा इस बहू का मुँह तो देखो, कैसी कर्कशा दिखाई पड़ रही है?

बुआ की आँखों के आँसू सूख गए थे। वे आँखें पिंजरे में बंद शेरनी की आँखों की तरह दहकने लगी थीं - बंद करो यह बकवास, तुम लोगों को मेरी आलोचना करने का किसने अधिकार दिया? चली जाओ यहाँ से।

उसी भयानक असहजता के साथ वे अपनी सास की ओर मुड़ी थीं - आप चिंता न करें अम्माजी, मैं बाबूजी के पास जाने के लिए तैयार हूँ। करमू बनिहार से कहिए, बैलगाड़ी तैयार करे।

ससुराल से विदा लेते समय कालिंदी बुआ ने शरीर पर पहने कपड़ों के अलावा और कुछ नहीं लिया था।

बुआ अपनी पीड़ा को चुपचाप झेलने का अभ्यास साध चुकी थीं, लेकिन उनकी पथराई हुई आँखों का दर्द बाबा नहीं झेल सके थे। छह महीनों की लंबी बीमारी भोगने के बाद उन्होंने अपने कष्टों से मुक्ति पा ली थी। अंतिम बार संज्ञाहीन होने से पहले उन्होंने कालिंदी बुआ को पास बुलाया था - मैं जानता हूँ, तू निर्दोष है मेरी बच्ची, गंगाजल में जहर घोल दिया जाए तो असर जहर का ही होगा, तेरा कष्ट ईश्वर दूर करेंगे, जमाई बाबू का मन जरूर बदलेगा।

कालिंदी बुआ जिंदगी भर की खामोशी की भारी-भरकम चट्टान-तले दबकर रह गई थीं। खुलकर हँसना तो दूर रहा, हम लोगों ने कभी उन्हें धीरे-से मुस्कराते भी नहीं देखा था। दिन-भर अम्मा के साथ रसोई के काम निपटातीं और फुरसत में अपनी कोठरी में शीतलपाटी पर बैठी भगवद्गीता के पृष्ठ पलटती रहतीं-स्कूल से लौटकर मैं प्राय: जिद करती थी-बुआजी, चलिए न, थोड़ी दूर टहल आएँ! आप हमेशा अपनी कोठरी में बंद पड़ी रहती हैं। आपका मन कैसे बहलता होगा? अम्मा के पास मोहल्ले की औरतें आकर बैठतीं तो अम्मा भी चुपके से आकर मनुहार कर जातीं-बाहर आइए न दीदी, कितनी औरतें आई हैं। बातचीत करने से थोड़ा मन बदलेगा, वे लोग आपके बारे में पूछ भी रही थीं। उन औरतों में बुआ के बारे में जानने के अतिरिक्त उत्सुकता तो थी ही। एक दिन बुआ को अम्मा ने जबरदस्ती उस मंडली में शामिल किया था - आप बाहर आइए तो सही, आपस में मिलने-जुलने से मन जरा हलका होता है। बुआ को अपने सामने पाकर उन औरतों ने अपनी बातचीत का केन्द्र उन्हें ही बना लिया था - आपके ब्याह के कितने साल बीते? पाँच साल?

- अभी तक एक भी बाल-बच्चा नहीं है?

- हुआ ही नहीं?

- आखिर इलाज-विलाज तो करवाया होगा न !

बुआ सहसा उठ खड़ी हुई थीं - तुम बैठो दुलहिन, मैं अंदर कुछ काम देखती हूँ।

उस दिन के बाद से अम्मा ने बुआ को बाहर निकलने के लिए टोकना छोड़ दिया था। कोई साल-भर बाद बुआ की ससुराल के किसी आदमी ने बाबूजी को सूचना दी थी - आपके बहनोई रमेशचंद्र ने नौकरी छोड़ दी है। गाँव जाकर बैठ गए हैं। सुना है, तबीयत भी ठीक नहीं चल रही है।

अम्मा ने सब कुछ सुनकर एक गहरी साँस ली थी - बेकसूर दीदीजी को उन्होंने इतनी बड़ी सजा दी, ऊपर बैठा भगवान तो सब कुछ देखता है न! बुआ ने अप्रत्याशित निर्णय लिया था-भाई, मेरे जाने का प्रबंध कर दो। इस वक्त मेरा बरमपुर में रहना बहुत जरूरी है। बाबूजी ने प्रतिवाद करना चाहा था - तुम चाहो तो बहनोईजी को यहीं लिवा लाने की कोशिश करके देखूँ, लेकिन उस नरक में तुम्हारा दोबारा जाना मैं ठीक नहीं समझता दीदी !

बुआ के होठों पर क्षण-भर के लिए एक सूखी हँसी तैर गई थी-वही नरक तो मेरा अपना है भाई; देखूँ, यदि उसमें से अपने लिए थोड़ी-सी भी शांति ढूँढ़ सकूँ।

ससुराल में कालिंदी बुआ का बड़ा ही बेरूखा स्वागत किया गया था। बाबूजी को किसी ने पानी तक के लिए नहीं पूछा था। बुआ ने ओसारे से ही उन्हें विदा दे दी थी - इसे अपना अपमान नहीं समझना भाई, ये लोग मुझसे नाराज हैं न, इसलिए...

फूफा सचमुच बीमार थे, लेकिन वह बीमारी कैसी थी? बुआ ने बाबूजी के पास पत्र लिखकर सब कुछ बताया था - ऑफिस में ये त्यागपत्र दे आए हैं भइया! पहलेवाली देह आधी भी नहीं रह गई है। बाहर के ओसारे पर दिन-भर गुमसुम बैठे रहते हैं। देवरजी कह रहे थे कि शहर छोड़ने से पहले उस औरत के घर जाकर खूब लड़-झगड़ आए थे। इनकी रोटी-पानी का प्रबंध भी मुझे ही करना पड़ता है।

कालिंदी बुआ की ससुराल के सभी लोग बुरी तरह उखड़े हुए थे। उनकी सास दिन-भर बुआ को ही कोसती रहती थीं-न इसके ऐसे लच्छन होते और न मेरे सोने जैसे बेटे को बुद्धि ऐसा पलटा खाती। सारा किरिया-करम कर चुकने के बाद अब छोह दिखाने

चली है कुलबोरनी! चंदर फूफा का मुँह धुलाने से लेकर नाश्ता कराने, कपड़े बदलवाने, खिलाने की सारी जिम्मेदारी बुआ की थी। नादान बच्चे की तरह वे बुआ के हर हुक्म को मानते उन्हें टुकुर-टुकुर ताकते रहते थे। फूफा के भाई ने उन्हें पागल करार दिया था। बुआ की देवरानी भी हर वक्त नाक-भौं सिकोड़ती रहती थी - कैसे निर्लज्ज हैं भइया जी, जरा-सा ओसारे पर निकलो तो ऐसे घूरते हैं कि कलेजा दहल जाता है। पराई औरतों को ऐसे निहारते आँखें नहीं फूट जातीं!

बुआ की सास का भी यही कहना था-कितना आसरा लगाकर हमने अपने बेटे के माथे मौर बाँधा था। घर बस गया होता, बाल-बच्चे रहते तो उसकी यह दुर्दशा न होती। जिसके करम में ऐसी चुड़ैल बहुरिया हो, वह पगलाएगा नहीं तो और क्या होगा? नि:शब्द सेवा करती हुई बुआ ने उस दिन धीरे-से कहा था-यहाँ दिन-भर बैठना अच्छा नहीं लगता, गाँववालियाँ आती-जाती रहती हैं, आप कोठरी में चलकर आराम करते।

चंदर फूफा सहसा ठठाकर हँस पड़े थे। बड़ी ही खौफनाक हँसी-मैं लफंगा हूँ न, गाँव की औरतें मुझसे डरती हैं! तुम भी डरती हो न! सुना नहीं तुमने, छोटी बहू क्या कहती रहती है? बुआ की जिद मानकर कुछ दिनों तक फूफा उस कोठरी के अंदर लेटे रहे थे। उनकी मानसिकता में थोड़ा-सा बदलाव देखकर बुआ का धीरज बढ़ा था-अब ये दो-चार अच्छी बातें करने लगे हैं, कभी-कभी पढ़ने के लिए अखबार भी माँगते हैं। उम्मीद है कि ऐसे ही सुधार होता जाएगा।

बुआ की चिट्ठी मिलने के कुछ दिनों के बाद ही बिलकुल दूसरी खबर आई थी। एक दिन फूफा बौराए हुए हाथी की तरह अपनी कोठरी में गोल-गोल चक्कर काटते चीत्कार करने लगे थे - तुम लोगों ने मुझे समझ क्या रखा है, मैं पागल हूँ? मुझे कमरे में बंद कर दिया गया है। मेरे लिए ओसारे में आरामकुर्सी बिछाओ, इस कोठरी में मेरा दम घुटता है। बुआ के समझाने पर उन्होंने और भी उग्र रूप धारण कर लिया था-मैं सब समझता हूँ। तू भी अपना उल्लू सीधा करना चाहती है। मैं तेरी कोठरी में बंद रहूँगा?कभी नहीं। क्या कहा? सब मुझे देखकर हँसते हैं? जमशेदपुर में सारे चपरासी मुझसे थर-थर काँपते थे। तू भी सामने से चली जा, नहीं तो मैं तुझे बहुत पीटूँगा।

अपने असंतुलन के आखिरी दौर में फूफा घर से दूर-दूर निकल जाते थे। कभी सिवान पर बैठे बनिहारों से खैनी के लिए तकरार करते, उन्हें गंदी-गंदी गालियाँ देते, कभी पोखर पर उद्दंड की तरह खड़े आने-जानेवाली औरतों को घूरते रहते। रात होने के

पहले कालिंदी बुआ उन्हें किसी तरह ढूँढ़कर, मनाती हुई वापस लातीं। हर दिन उनकी हालत और भी बदतर होती जा रही थी। कालिंदी बुआ की सास जहर भरे बोल बोलते नहीं थकती-कौआहँकनी से रानी बनी है, मरद पगला गया तो इतने चोंचले चल रहे हैं। अच्छा-भला था तो इतनी कूव्वत नहीं थी कि कोख में एक कदली का फूल भी फूटे। अब सारे गाँव को तमाशा जो दिखाया जा रहा है। हमारे घर की बेटी-पतोहू कभी मुँह उघाड़कर सिवान नहीं गई थीं।

बाबूजी कई बार कालिंदी बुआ के पास गए-बहनोईजी हमारे साथ चलने के लिए राजी होते तो वहाँ इनके इलाज का इंतजाम होता। दीदी, तुम कहो न !

शहर जाने का नाम सुनते ही फूफाजी बिदक उठते थे-शहर में वेश्याएँ रहती हैं। ऐसी वाहियात जगह ले जाकर तुम मेरा धर्म भ्रष्ट करोगे। देखते नहीं यह जनेऊ, मैंने इसकी कसम खायी है। मैं शहर नहीं जाऊँगा।

बाबूजी ने कुछ रूपए देने चाहे थे। बुआ ने लेने से इनकार कर दिया था। ये बड़े स्वाभिमानी हैं, जान जाएँगे तो और भी बुरा होगा। हमें पैसों की जरूरत नहीं।

पैसे की कितनी जरूरत थी, यह तो कालिंदी बुआ ही जानती थी। उनकी ससुराल के पिछवाड़े बँधी पछाँही गाय भरपूर दूध देती थी लेकिन फूफा को थोड़ा-सा भी दूध नहीं दिया जाता था। घर के लोगों ने तर्क दे रखा था-दूध पीने से इनके दिमागपर और गरमी चढ़ेगी।

फूफा को सुला देने के बाद बुआ जब रसोई में होतीं, तब तक सब कुछ समेटा रहता था। दो-चार सूखी रोटियाँ किसी कोने में पड़ी होती थीं।

होली पर बाबूजी बरमपुर गए थे। फूफा उस दिन बिलकुल ठीक दिखाई पड़ रहे थे। बुआ के हाथ की धुली लुँगी-गंजी पहने वे दालान में बैठे थे। बाबूजी के प्रणाम का उत्तर देते हुए उन्हें पास बैठने का इशारा किया था।

अब तबीयत कैसी है?

फूफा ने बड़े अपनेपन से बाबूजी के कंधे पर हाथ रखा था-हमें कुछ हुआ थोड़े ही है। आप जानते नहीं साले साहब, ये हमारे छोटे भाई हैं न, लक्ष्मण के ये अवतार हैं। चाहते हैं कि हमें बीमार करार दें, जिससे सारी जमीन-जायदाद पर इनका अकेले दावा हो जाए। मेरे बाल-बच्चे भी नहीं हैं न ! लेकिन हम ऐसा नहीं होने देंगे।

ऐसी नपी-तुली और सूझ भरी बातें सुनकर बाबूजी की हिम्मत बढ़ी थी - आपको अपनी नौकरी नहीं छोड़नी थी पाहुनजी, शहर में रहते तो आप और दीदी आराम की जिंदगी तो...

फूफा की आँखों में सहसा नफरत के शोले सुलग उठे थे-वह सब याद मत दिलाइए तिवारीजी, शहर हमारे लिए दुनिया की सबसे वाहियात जगह है। और फिर वे ठीक ही तो कहते हैं - उनका हिस्सा अलग हो जाये तो शायद वे शांति पा सकें। पटना में मेरे एक वकील मित्र हैं। मैं अगले सप्ताह ही उनसे बातचीत करूँगा।

वकील साहब ने फूफा की ओर से दावा पेश करने के लिए कहा था। बाबूजी का वह पत्र फूफा के छोटे भाई के हाथ लग गया था। उसी दिन एक और बात हुई थी। बरमपुर के रग्घू साह चंदर फूफा के बचपन के साथी रह चुके थे। उन्होंने बुआ की परिस्थिति को देखते हुए बहुत पहले ही अपनी ओर से मदद करनी चाही थी - इसे कर्ज समझकर रख लो भौजी, चंदर के शौक की चीजें या उसके खाने-पीने में कोई कमी नहीं करना। मेरा साथी दुरूस्त हो जाए तो मैं समझूँगा, सब वसूल हो गया।

बुआजी ने अपनी ओर से प्रस्ताव रखा था - मेरा दुर्दिन है, लेकिन मैं तुमसे ऐसे दान नहीं ले सकती रग्घू भइया। हाँ, तुम्हारी दुकान की कोई ऐसी जरूरत हो, जिसे मैं घर बैठे फुरसत से निबटा सकूँ, तब और बात होगी।

बुआ ने अखबार और सादे कागज का ठोंगा बनाने का काम हाथ में ले लिया था। घरवालों से छिपकर अपनी कोठरी में कागज कतरती, लेई चिपकाती बुआ को रँगे हाथ पकड़ने का दावा उसी दिन उनकी देवरानी ने किया था - देखिए अम्माजी, दीदीजी घर की इज्जत बेच खाने पर तुली बैठी हैं। अब समझ में आया रग्घू साह की औरत क्यों हर दूसरे-तीसरे दिन उनकी कोठरी का फेरा लगाती है।

बुआ के देवरजी ने विकराल रूप धारण किया था-यह पत्र देखो अम्मा। भौजी की जालसाजी हम सबों को बरबाद करके दम लेगी। भइया से हमारे खिलाफ कोर्ट में नालिश ठोंकवाने का षड्यंत्र कर रही है। इनके भाई ने वकील ठीक किया है।

बुआ की सास ने बाबूजी की सात पुश्त का गालियों से उद्धार कर दिया था - कुलच्छनी ठोंगा बनाकर बेच रही थी? रग्घू साह के बाप से हमारी पुरानी दुश्मनी है - वह तालियाँ पीटकर हँसे, इसीलिए न ! मरद का बहुत छोह करनेवाली आई है बाँट-बखरा की कुचाल चलनेवाली थी। हमारी छाती पर मूँग दलने के लिए ही तूने इतनी बड़ी नौटंकी रची? तेरे पेट में इतनी बड़ी दाढ़ी होगी, हम नहीं जानते थे। बुआ

ने प्रतिवाद में कहना चाहा था - जीने का हक हमें भी है अम्माजी। तब हमारी उमर समझ की नहीं थी, लेकिन अब...

बुआ के देवरजी ने उन्हें सुनाकर कहा था - तुम्हारे लिहाज से अब तक हम चुप थे अम्मा, अब हम दिखा देंगे। भौजी किस गुमान में भरी हुई है?

बुआ ने बड़ी शांति से जवाब दिया था - तुम्हारे भइया स्वस्थ हो जाएँ, हमें किसी चीज की जरूरत नहीं है बबुआजी। हमारा क्या, दो प्राणियों की कहीं भी गुजर हो जाएगी।

बाबूजी को उनके मित्र ने ही सूचना दी थी-फूफा की स्टेनो खुलेआम उनके घर में रहने लगी थी। फिर उसके पैर भारी हुए तब उसने विवाह के लिए भी जिद की थी। फूफा इस स्थिति के लिए तैयार नहीं थे। अपनी बदनामी से बचने के लिए उन्होंने अपनी सारी जमा-पूँजी उस औरत को सौंप दी थी। सारा वाकया सुनकर उनके बॉस ने भी उन्हें खूब लताड़ा था। और वे उसी बक-झक के दौरान तैश में त्यागपत्र देकर चले आए थे। बाद में सुना, गाँव जाने के पहले उस औरत के भाइयों ने फूफा की खूब पिटाई की थी। बेहोशी से उठने के बाद ही वे अंट-संट बकने लगे थे।

बुआ के देवर ने चाल चली थी। दिन भर फूफाजी के आगे-पीछे घूमते हुए उनसे मीठी-मीठी बातें करते हुए वे उन्हें यह विश्वास दिलाने में सफल हो गए थे कि बुआ उन्हें शहर भेजने के लिए यह सब चाल चल रही हैं। वहाँ उनके दिमाग में बिजली की सेंक दी जाएगी, उन्हें बाँधकर रखा जाएगा। इसीलिए तो रग्घू साह की बीवी से भौजी की इतनी पटने लगी है - आपको पता है भइया, भौजी ने अम्मा के सन्दूक से कितने जेवर निकालकर रग्घू साह की बीवी को दे दिए? उसका बस चले तो पूरा घर बंधक कर आपको पागलखाने और हम सबको जेल भिजवाकर दम ले। वह बड़ी खतरनाक औरत है भइया।

उसी दौरान फूफाजी को ज्वर हो आया था। गाँव के पंचायती अस्पताल की दवा कोई असर नहीं कर पा रही थी। पंद्रह-बीस दिनों तक लगातार तेज ज्वर बना रहा था। बुखार की बेहोशी में फूफाजी की बड़बड़ाहट सुनकर बुआ सहम गई थीं।

उन्होंने देवर से चिरौरी की थी - बबुआजी, न हो तो आरा से किसी अच्छे डॉक्टर को बुला लेते। इनकी तबीयत...

उनके देवर ने फूफा के कनों में फुसफुसाते हुए कहा था - भौजी तुम्हें शहर ले जाना चाह रही है भइया, जाओगे? शहर जाने का नाम सुनते ही फूफाजी चौकन्ने हो गए थे। उनकी कमजोर देह गुस्से से थर-थर काँपने लगी थी। पैरों के पास बैठी बुआजी की ओर पूरी ताकत से अपनी खड़ाऊँ फेंकते हुए वे अपने सिर के बाल नोचने लगे थे - तू मुझे बरबाद करना चाहती है? जा, मेरी आँखों के सामने से दफा हो जा। उन लोगों ने मुझे जहर देकर मारना चाहा था, तू भी मुझे जहर देकर खत्म कर देगी।

फूफाजी ने बुआ के हाथ से दवा लेना बंद कर दिया था। उन्होंने उनका मुँह तक देखने से परहेज कर दिया था। बुखार उतर जाने के बाद भी फूफा फिर अपने पुराने रूप में नहीं आ सके थे। अपने ही सिर के बाल बेरहमी से उखाड़ने लगते। दिन-भर अपने में हँसते-बड़बड़ाते रहते।

एक दिन छोटे भाई के कमरे से हँसी की किलकारियाँ सुनकर वे ऐंठते हुए वहाँ पहुँच गए थे - तुम लोगों को हँसी सूझ रही है। सब मिलकर यहाँ ठट्ठा कर रहे हैं - मेरी ओर कोई देखता तक नहीं। मैं कहता हूँ, मेरा हिस्सा अलग करो, नहीं तो मैं एक-एक को जान से मार डालूँगा।

छोटे भाई की बहू को तीख़ी हँसी हँसते देखकर फूफा का उन्माद अपने आखिरी छोर पर पहुँच गया था। उन्होंने तुरन्त अपने भाई की गर्दन पकड़ ली थी।

- बचाओ-बचाओ ! बुआ की सास और देवरानी की चीख़ें सुनकर पूरे टोले के लोग उनके आँगन में सिमट आए थे।

भीड़ को देखकर फूफाजी चुपचाप ओसारे की ओर बढ़ गए थे।

उस रोज बुआजी के देवर ने गाय के पगहे से उन्हें मारा था - तुम बीच में मत बोलना अम्मा। इस पगले की खोज-खबर मुझे आज जी भरकर लेने दो। इसका क्या ठिकाना? यह फिर कब हम पर चढ़ाई कर बैठे?

बुआ के साथ और अधिक पाबंदी बरती जाने लगी थी। वे बाबूजी के पास पत्र न लिख सकें, उनके सन्दूक की तलाशी लेकर सारे लिफाफे निकाल लिए गए थे। साह की बीवी का आना-जाना बंद हो गया था।

यातनाओं की एक बेहद कँटीली बाड़ बुआ के चारों तरफ खींच दी गई थी। अपनी सूनी आँखों में बेहतर जिंदगी के सपने सँजोनेवाली बुआ का मन दो-तरफा लड़ाई

लड़ते हुए लहूलुहान हो चुका था। फूफा के मन में उनके लिए जो नफरत पैदा की गई थी, उसका पैनापन भी नागफनी के काँटों की तरह रोज-ब-रोज बढ़ता ही जा रहा था। अपनी सेवा और अपने कोमल व्यवहार से फूफा की असंयत जिंदगी में सहजता ला सकने का विश्वास वे धीरे-धीरे खोती जा रही थीं। बरमपुर से आए रग्घू साह ने सब कुछ बताया था - आपकी बहन की तकलीफ देखी नहीं जाती तिवारीजी। मैंने मदद की भरसक कोशिश की थी। लेकिन चंदर के छोटे भाई ने गाँव-भर में मेरी बदनामी की हवा फैला दी। चंदर की फटेहाली देखकर कलेजा मसोसता है, लेकिन मेरा उन लोगों पर कोई हक भी तो नहीं है न भाई। आप किसी तरीके से चंदर को वहाँ से निकाल लीजिए। दूध के साथ उन्हें नशीली दवा दी जा रही है। आप छोटे भाई को नहीं जानते।

बाबूजी ने आखिरी कोशिश की थी-शहर न सही, आप मेरे गाँव चलकर रहिए पाहुनजी, वहाँ आपकी पूरी सेवा होगी, हम किसी चीज की तकलीफ नहीं होने देंगे।

फूफा राजी हो गए थे।

बुआ ने बड़ी आतुरता से यात्रा की तैयारी की थी। फूफा के कपड़े-लत्ते समेटती हुई वे पूरी तरह आश्वस्त थी-अब इनकी मति पलटेगी भइया। यहाँ से इनको कहीं और ले जाना जरूरी हो गया था। गड्ढे में धँसी बुआ की आँखों में नए उत्साह की चमक देखकर बाबूजी निश्चित हुए थे-वहाँ तुम्हारी सेहत भी सुधरेगी दीदी, इस कसाईखाने से मुक्ति तो होगी।

बस की यात्रा से थके-माँदे, ओसारे में सोये बाबूजी की आँखें रात के आखिरी पहर में खुली थीं, उनके बगल में बिछी फूफाजी की खाट खाली थी।

पाहुनजी? पाहुजी? बाबूजी की पुकार सुनकर बुआ बाहर आ गई थीं - क्या हुआ भाई?

सूनी खाट की ओर इशारा करते परेशान से दिखाई पड़ते बाबूजी को बुआ ने आश्वस्त किया था - इनकी आदत है भाई, कभी-कभी तो सारी रात खेतों में टहलते रह जाते हैं। अपनी बेध्यानी में कहीं निकल गए होंगे, आ जाएँगे।

लेकिन फूफाजी नहीं लौटे थे।

बाबूजी उन्हें सब तरफ ढूँढ़कर लौट आए थे। दूसरे दिन शाम फूफा की बेजान देह पोखरे से निकाली गई थी। चौबीस घंटे पानी में रहने के बावजूद लाश के चेहरे पर खरोंच के निशान बिलकुल साफ थे।

सूनी कलाइयोंवाले हाथों को मटमैले आँचल में छिपाती बुआ बाबूजी का सहारा लेकर रिक्शे से उतरी थीं।

काठ की बेजान मूरत-सी उनकी समूची देह निश्चेष्ट थी।

कुछ खा लीजिए दीदीजी !

वह सब भूलने की कोशिश करो दीदी !

आप कुछ बोलिए न बुआ !

हमारी हर चेष्टा बेकार गई थी।

हारकर अम्मा ने तीन साल के दीपू को बुआ की गोद में डाल दिया था - हमारा भी आप पर कोई हक है दीदीजी, आपको इस दीपू की सौगंध, आप अपने मन को धीरज दीजिए।

बुआ की कमजोर बाँहों ने दीपू को अपने बहुत करीब समेट लिया था। उनकी आवाज में गहरी क्लांति थी - मैं ठीक हूँ दुलहिन, बहुत थक गई हूँ न, थोड़ा आराम कर लूँगी तो शायद...

अपनी जिंदगी के जख्म को बुआ ने हमारे प्यार के अवलेप से भरने की भरपूर कोशिश की थी। एक लंबे अरसे तक उन्होंने जो कुछ भोगा था, उसका दर्द अमोलवा की कहानी के करूण राग की तरह उनकी आत्मा में सिमट गया था। दीपू ने पहली बार उनके मुँह से यह कहानी सुनकर अचरज से पूछा था - जिंदा बच्चे आम और कदली के पौधे कैसे बन गए? क्या हम भी पेड़-पौधे बन सकते हैं?

बुआ ने बात टाल दी थी। पड़ोस की मिसराइन चाची ने अम्मा से पूछा था - रोज रात को आपकी ननद रोया करती हैं क्या बहनजी?

दीपू ने गुस्से से आँखें तरेरते हुए उन्हें जवाब दिया था - बुआजी रोएँगी क्यों भला? वे रोज सोते समय अमोलवा की कहानी गाकर सुनाती हैं जी !

मिसराइन ने कटाक्ष किया था - कौआहँकनी रानीवाली कहानी? जो घर-भर की ताबेदारी करती रहती थी - उसी की न?

हाँ जी, दीपू ने छाती फुलाते हुए बड़ाई पाने के ख़्याल से कहा था - हम अमोलवा बनेंगे और नन्ही कदली का फूल बनेगी। उसका इशारा हमारी सबसे छोटी बहन की ओर था, जो दिन-भर बुआ की बाँहों में झूलती रहती थी। मिसराइन ने पान से काले हुए दाँतों को भरपूर झलकाते हुए फुसफुसाकर पूछा था - और कौआहँकनी कौन बनेगा रे दीपू?

बुआ की संयत किंतु सख्त आवाज सुनकर कठोर चुहल का रस लेती मिसराइन सहसा सहम गई थी - वह कौआहँकनी मैं हूँ, यही न कहना चाहती हैं आप?

अम्मा ने पड़ोसिनों से सारे ताल्लुक तोड़ लिए थे। बुआजी के जीवन की मोहलत हमारे घर में मुश्किल से दस-ग्यारह महीने रही होगी। इस बीच पेट-दर्द की शिकायत उन्हें कई बार हुई थी। लेकिन वे जान-बूझकर दर्द छिपा ले गई थीं। रोग जब असाध्य हो गया था, तब डॉक्टरों ने मत दिया था-ऑपरेशन से लाभ हो सकता है... लेकिन जमशेदपुर ले जाना होगा। इन्हें बच्चेदानी का कैंसर...

बुआ ने टाल दिया - डॉक्टर तो ऐसे ही राई का पहाड़ बना देते हैं। कुछ नहीं हुआ है, कहीं नहीं जाएँगे।

दर्द सहने की अद्भुत शक्ति थी बुआ में, डॉक्टरों ने रोग का निदान कर दिया था। बुआ तब भी संयत थी। बाबूजी बेहतर इलाज के लिए जिद करते तो कहतीं - तुम्हारी होमियोपैथी की गोलियों से बहुत फायदा है भाई। अंग्रेजी दवा पर मेरा विश्वास नहीं है।

वे पूरी तरह खाट से लग चुकी थीं। जब भी दर्द की तेज लहर उठती, उनके चेहरे पर उभरी रेखाएँ असह्य करूणा के चित्र उकेरने लगतीं। आँखों की गुमसुम तरलता भयंकर तकलीफ से जूझती उनकी आत्मा को बेनकाब करने के लिए मचल-मचल उठती। उन दिनों हम सब बुआजी के इर्द-गिर्द बैठे रहते-बहुत तकलीफ हो रही है बुआ?

नहीं रे, हमने तो इससे बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाई हैं न। यह तो कुछ भी नहीं।

आखिरी बार होश खोने से पहले उन्होंने दीपू को पास बुलाया था - अब अमोलवा और कदली की कहानी नहीं सुनेगा दीपू?

उस क्षण दीपू असाधारण रूप से गम्भीर होता हुआ बुआ का माथा सहलाने लगा था - पहले तुम अच्छी हो जाओ बुआ। लाओ, तुम्हारे हाथ-पाँव दबा दूँ।

नहीं रे दीपू, रहने दे। बुआ ने करवट बदलते हुए कहा था - आज तू मुझे वही कहानी सुनाएगा बेटे? दीपू अटपटे राग में गाने लगा था। दाहिनी पाटी पर दो बूँदें जलते हुए आँसू टपक गए थे।

कहानी वही थी - संदर्भ बदल गया था।

बुआ के जीवन का वैसा आदर्शवादी अंत नहीं हुआ था - मेरी किस्मत तो कौआहँकनी रानी से भी गई - बीती थी न भाई, मेरी कोख से कोई कदली का फूल भी तो नहीं फूटा था न ! मैंने बहुत सोचा, बहुत गौर किया। दोष किसका था - कौन जाने? अब तो ऊपर जाकर ही पूछूँगी न !

बुआ की निष्प्राण देह से लिपटा हुआ दीपू बिलख-बिलखकर रो रहा था। आँसुओं के मासूम कतरे उसकी आँखों से चूकर बुआ के आँचल पर टपक रहे थे।

मुझे ऐसा लगा था, जैसे बुआ का आँचल ढेर सारे फूलों से भर गया हो।

बुआ की मुखाग्नि क्रिया उनकी इच्छानुसार दीपू से ही करवाई गई थी।

आज वे नहीं हैं लेकिन उनके मुँह से सुनी हुई उस कहानी का अर्थ अब भी कान में गूँजता रहता है - कौआहँकनी मैं हूँ और अमोलवा और कदली मेरी कोख मे अजन्मे बिरवे !

मेरी निर्दोषिता का मोल अगले जन्म में मेरी कोख तो चुकाएगी न ! बस, एक जन्म के लिए हम तुमसे तुम्हारा दीपू उधार माँगते हैं-दुलहिन !

https://www.hindiadda.com/kadali-ke-phool/